**ओ३म्**

**‘जीव, ईश्वर तथा महर्षि दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं, एक चेतन पदार्थ है एवं दूसरे जड़ पदार्थ, जो चेतन पदार्थों के गुणों के सर्वथा विपरीत गुण वाले होते हैं। इन चेतन पदार्थों में जीव और ईश्वर दोनों ही चेतन पदार्थ हैं, दोनों का स्वभाव पवित्र है, दोनों अविनाशी हैं तथा धर्मिकता आदि गुणों से युक्त हैं। इन गुणों की समानता होने पर भी दोनों के गुणों में परस्पर कुछ भेद भी हैं। पहला भेद तो यह है कि सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करना, सबको नियम में रखना तथा जीवों को पाप-पुण्य के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म परमेश्वर के हैं। जीव के सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन-पोषण तथा शिल्प-विद्या आदि अच्छे और बुरे कर्म हैं। दूसरा भेद यह है कि ईश्वर के नित्यज्ञान, आनन्द और अनन्त बल आदि गुण हैं जो सदा वा हर क्षण ईश्वर में विद्यमान रहते हैं। ईश्वर से उसके यह गुण पृथक कभी नहीं होते। इसके विपरीत जीवन में इच्छा-द्वेष, सुख-दुःख, ज्ञान और प्रयत्न आदि का होना यह गुण हैं। तीसरा अन्तर यह है कि ईश्वर सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है जबकि जीवात्मा अल्पज्ञ, एकदेशी, ससीम और अल्पपरिमाणी है। चैथा अन्तर दोनों में यह है कि ईश्वर नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध और नित्य मुक्त स्वभाव वाला है तथा जीव कभी बद्ध होने वाला और कभी मुक्त होने वाला है। पांचवां भेद ईश्वर व जीव में यह है कि ब्रह्म सर्वव्यापक और सर्वज्ञ होने से कभी भ्रम अथवा अविद्या से ग्रसित नहीं होता जबकि जीव अल्पज्ञ होने से कभी तो विद्या से युक्त होता है और कभी अविद्या से ग्रसित होता है। छठा अन्तर यह भी है कि ईश्वर को जन्म व मृत्यु का दुःख कभी नहीं होता परन्तु जीव को यह दोनों दुःख क्रम से होते रहते हैं तथा जीव इनके द्वारा सताया जाता है।

 उपर्युक्त पंक्तियों में हमने जीव व ईश्वर के स्वरूप व इनके गुणों के भेद को प्रस्तुत किया है। अब ईश्वर का स्वरूप व गुण कैसे हैं, इन्हें किंचित विस्तार से महर्षि दयानन्द की विचारधारा के अनुरूप प्रस्तुत करते हैं। महर्षि दयानन्द के अनुसार ईश्वर सब सत्य विद्या और विद्या से जाने जाने वाले सभी पदार्थों का आदि मूल अथवा तववज बंनेम है। **वह ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है।** सर्वव्यापक और निराकार होने के कारण ईश्वर कभी अवतार नहीं लेता। ईश्वर को अवतार लेने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। वह बिना अवतार लिए अपने सभी कार्यों को कर सकता है। जिस प्रकार से ईश्वर दूसरा ईश्वर नहीं बना सकता, स्वयं को मार नहीं सकता उसी प्रकार से ईश्वर अवतार भी नहीं लेता। ईश्वर का अवतार मानना एक अत्यन्त अज्ञानपूर्ण विचार व मान्यता है। वेदाध्ययन से इसका प्रतिवाद होता है। चेतन पदार्थ होने के कारण ईश्वर में ज्ञान व क्रियायें भी विद्यमान है। चार वेद यथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद ईश्वर का नित्य व अनादि ज्ञान हैं जिसे वह सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों के जीवन निर्वाहार्थ चार ऋषियों को देता है। ईश्वर का ज्ञान होने के पश्चात सब मनुष्यों का कर्तव्य व धर्म है कि वह वेद को आचार्यों से अवश्य पढ़े वा उसके अनुसार आचरण करें। इसी प्रकार से स्वयं वेद पढ़कर व उसे जीवन में धारण कर अन्यों को पढ़ाना व समझाना भी सभी मनुष्यों का धर्म नहीं अपितु परम धर्म है। इस धर्म का सबसे अच्छा पालन विगत 150 वर्षों में महर्षि दयानन्द जी व उनके अनुयायियों ने किया है। वेद में वर्णित ईश्वर के गुणों को जानकर ही ईश्वर की उपासना करना सभी मनुष्यों का कर्तव्य भी है। ईश्वर के स्थान पर अन्य किसी भिन्न सत्ता की उपासना करना उचित नहीं है। यह ईश्वर का स्वरूप व उससे सम्बन्धित मुख्य बातें हैं जो सभी मनुष्यों को जानने योग्य है। इसी प्रकार से जीव वा जीवात्मा अनादि, नित्य, अनुत्पन्न, अविनाशी, एकदेशी, ससीम, चेतन तत्व, कर्मानुसार या प्रारब्ध के अनुसार जन्म मरण धर्मा, पुण्य व पापों के अनुसार सुख व दुख भोगने वाला तथा वेदों का ज्ञान प्राप्त करके उसके अनुसार उपासना कर व अन्य कर्मों को करके मुक्ति को प्राप्त होता है। मनुष्य योनी प्राप्त होने पर सभी को पंच महायज्ञ अर्थात ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र यज्ञ, माता-पिता की सेवा, अतिथियों की संगति व सेवा तथा पशु-पक्षियों, कीट व पतंगों को उन्हें निर्वाहार्थ अन्न व भोजन प्रदान करना आदि कर्मों को करना आवश्यक है। इस प्रकार से यह ईश्वर व जीवों का स्वरूप व उनमें भेदों को जानना सभी मनुष्यों को उचित है।

 आईये, जीव व ईश्वर के परस्पर सम्बन्धों पर भी महर्षि दयानन्द के विचारों को जानते हैं। जीव और परमेश्वर का परस्पर व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है। यहां कोई ऐसी शंका करे कि जिस स्थान में एक वस्तु होती है उस स्थान में दूसरी वस्तु नहीं रह सकती। अतः जहां जीव है वहां परमेश्वर की सत्ता कैसे हो सकती है? इस शंका का समाधान यह है कि यह नियम समान आकारवाले पदार्थों में घट सकता है, असमान आकार वाले पदार्थों में नहीं। जैसे लोहा स्थूल और अग्नि सूक्ष्म होता है इसलिए लोहे में विद्युत् रूपी अग्नि व्यापक होकर एक ही स्थान में दोनों रहते हैं, वैसे ही जीव परमेश्वर से स्थूल और परमेश्वर जीव से सूक्ष्म होने से परमेश्वर व्यापक और जीव व्याप्य है। व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध की भांति ईश्वर और जीव का सेव्य-सेवक, आधार-आधेय, स्वामी-भृत्य, राजा-प्रजा और पिता-पुत्र आदि सम्बन्ध भी है।

 क्या परमेश्वर तीन कालों यथा भूत, भविष्य और वर्तमान की सभी बातों को जानता है? यदि जानता हो तो ईश्वर जैसा निश्चय करेगा वैसा ही जीव कर्म करेगा। इसलिए जीव स्वतन्त्र नहीं और ईश्वर जीव को दण्ड भी नहीं दे सकता क्योंकि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया, जीव ने वैसा ही कर्म किया। ऐसी शंका ठीक नहीं है। ईश्वर को त्रिकालदशर्री कहना मूर्खता का काम है। भूत, भविश्यत् जीवों के लिए है, परमेश्वर का ज्ञान तो सदा एकरस एवं अखण्ड रहता है। हां, जीवों के कर्म की अपेक्षा से परमेश्वर में त्रिकालज्ञता है, स्वतः नहीं। जैसे स्वतन्त्रता से जीव कर्म करता है, वैसे ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है। जीवों के कर्मों के फल देना ईश्वर के अधिकार में है और वह उनके कर्मानुसार सुख, दुःख फल देता है व जन्म-जन्मान्तरों में उन्हें मनुष्य-पशु-पक्षि योनियों में भेजा करता है।

 महर्षि दयानन्द के जीव व ईश्वर विषयक यह विचार वेद, तर्क, युक्ति व सृष्टि क्रम की कसौटी पर पूरी तरह सत्य है और सभी मनुष्यों के लिए समान रूप से मानने योग्य है। हम आशा करते हैं कि यह विचार सभी मनुष्यों के लिए ग्राह्य व उपयोगी होंगे।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**